याज्ञवल्क्यस्मृति में राजधर्म

[1]Dr. Meenu*, [2]Dr. Mamta Rani

[1]Assistant Professor, Department of History, Government College Bainswal Kalan, Sonipat, Haryana, India
[2]Assistant Professor, Department of History, Shaheed Udham Singh Govt. College Matak Majri, Karnal, Haryana, India

***Email ID**: [1]dahiyameenu23@gmail.com, [2]mposwal91@gmail.com*

Accepted: 07.01.2023 **Published**: 01.02.2023

मुख्य शब्दः राजधर्म, प्रजा–रक्षण, सुशासन, प्रतिनिधि।

शोध आलेख सार

प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक एवं धार्मिक साहित्य में 'राजधर्म' सबसे ज्यादा चर्चा का विषय रहा है। यद्यपि यदि हम प्राचीन इतिहास को देखें तो ज्यादातर राजाओं में 'राजधर्म' सम्बन्धी गुणों का अभाव रहा है। इन शासकों ने राजधर्म को अनदेखा करते हुए न तो राज्य के हित को देखा और न ही प्रजा–रक्षण के लिए पर्याप्त कदम उठाए लेकिन कुछ शासकों जैसे चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त, हर्ष ने अपने कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए दिखाया कि एक राजा को कैसा होना चाहिए। इन शासकों का उद्देश्य समाज में सुशासन था। विधिवेत्ताओं ने समाज में राजा को आदर्श बनाने के लिए अपनी विधि पुस्तकों में राजधर्म की विवेचना की। मनु ने मनुस्मृति में राजा के अधिकारों और राजधर्म के बीच सम्बन्धों की व्यवस्था की। इसी क्रम में याज्ञवल्क्य ने भी राजधर्म सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन करते हुए कहा है कि राजा ईश्वर का प्रतिनिधि है और उसे अपने कर्त्तव्यों की पालना करनी चाहिए।

पहचान निशान

**Corresponding Author*

© IJRTS Takshila Foundation, Dr. Meenu, All Rights Reserved.

परिचय

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के गुणों की विवेचना करते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं कि राजा को महान् उत्साही, बहुत अर्थ देने वाला, कृतज्ञ, वृद्धोपसेवी, सत्वयुक्त, कुलीन, पवित्र, सत्यवादी, आलस्य रहित, अक्षुद

अकठोर, बुद्धिमान, धार्मिक, व्यवसनों से रहित, वीर रहस्य के गोपन में निपुण, अपने राजकk;र्मों के छिद्रों को छुपाने वाला तथा आत्मविद्या, दण्डनीति एवं वार्ता–इसी त्रयी में विनीत होना चाहिए।[1]

इन गुणों की विवेचना करते हुए याज्ञवल्क्य राजा के अधिकारों और कर्त्तव्यों के विषय में भी विवरण देते हैं जो निम्नलिखित है :–

प्राचीन भारत में यदि राजा के अधिकारों की बात की जाए प्रारम्भ में राजा को सीमित मात्रा में अधिकार प्राप्त थे और वह प्रत्येक कार्य को अपने गुणों और कबीलों की इच्छानुसार करता था परन्तु समय बीतने के साथ–साथ राजा ने स्वयं को निरंकुश कर लिया और पाँचवीं ईसा पू. के पश्चात् धीरे–धीरे राजा ने उन अधिकारों को भी प्राप्त कर लिया जो प्रारम्भिक समाज में उसे प्राप्त नहीं थे जैसे राज्य की भूमि पर अधिकार। इन्हें जहाँ कुछ अधिकार प्राप्त थे वहीं इन अधिकारों की एवज़ में कुछ कर्त्तव्यों का पालन भी करना पड़ता था।

राजा के अधिकार तथा कर्त्तव्य

राजपदों पर नियुक्ति का अधिकार :–

राजा को अधिकार है कि वह बुद्धिमान, कुलीन, आपत्ति–हर्ष में स्थिर, पवित्र व्यक्तियों को मन्त्री बनाए ताकि वह उन व्यक्तियों के साथ राज्य के कार्यों पर विचार कर सके। ब्राह्मण पुरोहित से विचार–विमर्श करके ही वह पदाधिकारियों को नियुक्त करे।[2] याज्ञवल्क्य कहते हैं कि वह दैवज्ञ (ग्रहों के उत्पात एवं शमन में निष्णात) विद्या–अभिजन तथा दण्डनीति (अर्थशास्त्र) में कुशल शान्त और घोर कर्मों के प्रतिपादक, शास्त्र में निपुण व्यक्ति को पुरोहित बनावे।[3]

राजा को चाहिए राजा भूमि या निबन्ध देकर भविष्य के राजा या सभ्यों के ज्ञान के लिए लेखबद्ध कराये।[4] ततद कार्यों में आय–व्यय में जानकार कुशल व्यक्ति जो हृदय से पवित्र हो, को नियुक्त करे। वह व्यक्ति आयकर्म तथा व्ययकर्म में आलस्य रहित हो।[5]

कर प्राप्त करने का अधिकार :–

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा को यह अधिकार प्राप्त है कि राजा न्यायपूर्ण प्रजा को परिपालन करने वाला है तो वह प्रजाओं के पुण्य का छठा भाग प्राप्त करता है। अतः राजाओं का परिपालन सभी दानों से अधिक श्रेष्ठ है।[6]

निवास :–

याज्ञवल्क्य करते हैं कि राजा को यह अधिकार प्राप्त है कि वह रमणीय, पशुओं के निर्वाह योग्य, जीविका के लिए उपयुक्त वन स्थान में निवास करे। वही आश्रित जनों, कोश तथा अपनी रक्षा के लिए दुर्ग बनवाए।[7] तदनन्तर इच्छानुसार अन्तःपुर में विहार करे या मन्त्रियों से भेंट करे।[8]

जहाँ एक ओर राजा को राजपदों पर नियुक्ति का अधिकार, कर लेने का अधिकार तथा मनोवांच्छित स्थान पर निवास का अधिकार प्राप्त था वहीं दूसरी ओर इसके साथ दान देने, प्रजा रक्षण, राजकार्य, दण्ड

कर्त्तव्यों द्वारा समाज में संतुलन बनाए रखने सम्बन्धी कर्त्तव्यों का पालन भी करना होता था। इन कर्त्तव्यों का विवरण निम्नलिखित है :–

राजकार्य सम्बन्धी कर्त्तव्य :–

याज्ञवल्क्य स्मृति में राजा के कुछ राजकार्यों की विवेचना की गई है। जिसमें सबसे पहला राजकार्य स्वर्णादि के लाने के कार्य में नियुक्त व्यक्तियों द्वारा लाये गये स्वर्ण को भाण्डागार में रखवाये। फिर गुप्तचरों से भेंट करे और मन्त्रियों से विचार–विमर्श कर दूतों को उनके कार्यों पर भेजे।[9]

सायंकालीन समय में संध्या की उपासना करके गुप्तचरों के रहस्यमय भाषणों को सुने। फिर कुछ काल गीत–नृत्य में बितावे और तब भोजन करे। भोजन के बाद स्वाध्याय का पाठ करे।[10] तूर्य के शब्द से सोवे तथा उसी प्रकार जागे। अपनी बुद्धि से शास्त्रों तथा सभी कर्त्तव्यों का चिन्तन करे।[11]

राजा को ब्राह्मणों में क्षमाशील, स्नेहियों में सरल, शत्रुओं में क्रोधी तथा नौकरों एवं प्रजाओं में पिता के समान होना चाहिए।[12] राजा को चाहिए कि जो व्यक्ति राज्यकार्य में नियुक्त है उनके कार्यों को गुप्तचरों से जान कर राजा सदाचारियों को सम्मानित करे तथा पिपरीतो असदाचारियों को अपराधानुसार दण्ड दे। जो घूस से जीविका चलाते हों उन्हें राजा उनका धन लेकर राज्य से निकाल दे। श्रोत्रियों को दान, सम्मान और सत्कार से युक्त कर सदा बसावे।[13]

दान :–

भारतीय धर्म में 'दान' का विशेष महत्व रहा है। प्रारम्भिक काल से ही दान ने समाज में विशेष स्थान प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था। समाज में 'दान' द्वारा 'मोक्ष' प्राप्त करने की भावना बलवती हो चुकी थी। राजा इस क्रम में प्रथम था जो लगभग प्रत्येक अवसर पर दान–दक्षिणा दिया करता था। राजा के सम्बन्ध में याज्ञवल्क्य ने भी दान प्रकरणों की विवेचना की है जिसका वर्णन निम्ललिखित हैः–

राजा को श्रौत अर्थात अग्निहोत्रादि एवं स्मार्त उपासनादि क्रियाओं की सिद्धि के लिए ऋत्विजों का वरण करना चाहिए और वह राजसूयादि यज्ञों को विधिपूर्वक तथा पर्याप्त दक्षिणा देकर करे।[14]

वह ब्राह्मणों को विविध प्रकार के भोगपदार्थों के साथ धन भी दे। राजाओं के द्वारा जो विप्रों को दिया गया है वह उन राजाओं की अक्षय निधि होता है। राजा के लिए अग्नि की अपेक्षा ब्राह्मण रूपी अग्नि में हवन करना श्रेष्ठकर होता है क्योंकि वह क्षरणरहित, अव्यय तथा प्रायश्चित से रहित होता है।[15] याज्ञवल्क्य कहतें हैं कि राजा वस्त्र या ताम्रपट्ट पर अपर (बाहर) अपनी मुद्रा राजचिह्न लगाकर अपने पूर्वजों का वर्णन कर दान वस्तु की मात्रा तथा छेद अपने हाथ से तथा इस समय यह दिया गया यह आदेश पुष्ट करे।

दण्ड :–

किसी राज्य की व्यवस्था को बनाए रखने में दण्ड व्यवस्था महत्वपूर्ण स्थान रखता है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि सप्ताङ्ग राज्य को प्राप्त कर राजा दुराचारियों पर दण्ड लगावे। पूर्वकाल में ब्रह्मा ने धर्म को ही दण्ड के रूप में निर्मित किया था।[16]

यह दण्ड लोभी और चंचल बुद्धि वाले राजा द्वारा न्यायपूर्वक प्रयोग करना सम्भव नहीं है। उसका कर्तव्य है कि वह सत्यावादी रूचि तथा उत्तम सहायकों से युक्त हो ताकि न्याय कर सके।[17] यदि राजा का दण्ड शास्त्रानुसार प्रयुक्त हो तो देवों, असुरों और मनुष्यों सहित समग्र जगत को आनन्दित करता है अन्यथा शास्त्रविरूद्ध प्रयुक्त होने पर वह जगत को प्रकुपित करता है।[18] याज्ञयवल्क्य का कथन है कि अधर्मपूर्वक दण्डित करना स्वर्ग, कीर्ति और लोकों का विनाशक है और यदि राजा विधिपूर्वक दण्ड देता है तो राजा को स्वर्ग, कीर्ति और जय की प्राप्ति होती है।[19] राजा का कर्तव्य है कि यदि उसका भाई, पुत्र, अर्धपात्र, श्वशुर, मामा इत्यादि रिश्तेदार भी अपने धर्म से विचलित हों तो उन्हें राजा दण्डित करे।[20] इसी क्रम में आगे याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो राजा दण्डनीय लोगों को विधिपूर्वक दण्ड देता है तथा मारने योग्य लोगों को मारता है। उसने दक्षिणायुक्त यज्ञों का अनुष्ठान कर दिया है।[21] इस प्रकार राजा (दण्डय को दण्ड देने में) यज्ञ का फल विचार कर (तथा अदण्डय को दण्ड देने में स्वर्ग का नाश जान कर) पृथक–पृथक वर्णादि क्रम से सभ्यों शास्त्र– विद्वानों से आवृत होकर प्रतिदिन स्वयं विवादों को देखना भी राजा का कर्तव्य है।[22] राजा के दण्ड कर्तव्यों की महता पर प्रकाश डालते हुए याज्ञवल्क्य कहते है कि कुलों, जातियों की श्रेणियों, गणों और जनपदों को अपने धर्म से विचलित होने पर राजा दण्ड देकर उनको स्वपथ में स्थापित करे।

प्रजा रक्षण :–

राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा रक्षण का है। वह छल–कर्ताओं, चोरों तथा विशेषकर वायस्थों से प्रजा की रक्षा करे।[23] आरक्षित प्रजा जो कुछ पाप करती है उसका आधा राजा का होता है। क्योंकि राजा रक्षा के लिए कर ग्रहण करता है।[24]

युद्ध :–

अपने राज्य को समृद्ध करना राजा का कर्तव्य है। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि स्वराष्ट्र के परिपालन में राजा को जो धर्म प्राप्त होता है वही धर्म दूसरे राज्य को वश में करने पर उसे प्राप्त होता है। याज्ञयवल्क्य कहते हैं कि जब पर–राज्य राजा के वश में हो तो जो आचार–व्यवहार और कुलमर्यादा जैसी थी उसी के अनुसार उसका परिपालन करे।

उपयुक्त विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है जहाँ एक ओर राजा को राज्य करने का अधिकार था वहीं दूसरी ओर उसका राजधर्म कुछ कर्तव्यों की व्याख्या भी करता है। जिसका वर्णन विभिन्न विधिवेताओं ने किया है और इसी कड़ी में आगे याज्ञवल्क्य ने राजधर्म के साथ पूरा न्याय किया तथा राजा को निर्देश दिया कि अधिकारों से पूर्व राजा राज्य और जनता के प्रति अपने कर्तव्यपालन पर विशेष बल दे जिससे राज्य को दिन दुगुनी राज चौगुनी तरक्की प्राप्त हो सके।

सन्दर्भ

---

1 याज्ञवल्क्य स्मृति (आचाराध्याय), 13.309–311

महोत्साहः स्थूललक्षः कृतज्ञो वृद्धसेवकः

विनीतः सत्त्संपन्नः कुलीनः सत्यावाक्शुचिः
अधीर्घर्सूत्र स्कृतिमानक्षुद्रोऽपरूषस्तथा।
धार्मिकोऽव्यसनश्चैव प्राज्ञः शूरो रसस्यवित।।
स्वरन्ध्रगोप्ताऽऽन्वीक्षिक्या दण्डनीत्यां तथैव च।
विनीतस्त्वथ वार्तायां य्यां चैव नरद्यिपः।।

2 याज्ञवल्क्य स्मृति (आचाराध्यायः), 13.312

3 वही, 13.313

4 वही, 13.318

5 वही, 13.335

6 वही, 13.321

7 वही, 13

8 वही, 13.328

9 वही, 13.330

10 वही, 13.331

11 वही, 13.334

12 वही, 13–338–339

13 वही, 13–314

14 वही, 13–316

15 वही, 13–354

16 वही, 13–355

17 वही, 13–356–357

18 वही, 13–358

19 वही, 13–359

20 वही, 13–360

21 वही, 13, 336

22 वही, 13–337

23 वही, 13–342

24 वही, 13–343